*Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*
*Vol. XV, Issue No. 4, June-2018, ISSN 2230-7540*

# विभिन्न काल एवं परिस्तिथियों में नारी अस्मिता

**Savita[1]* Dr. Govind Dwivedi[2]**

[1] Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Assistant Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

***सार - अस्मिता व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशिष्ट एवं विलक्षण पहचान है जो उसके समाज की विलक्षण ऐतिहासिकता एवं वास्तविक अथवा मिथकीय अतीत से जोड़ती है। नारी एक ऐसी सम्पूर्ण मानवीय इयत्ता है जो, पुरूष से शारीरिक भिन्नता लिए असीम संभावनाओं का पूँजीभूत रूप है जो अपनी आन्तरिकता, वैयक्तिकता और स्वतंत्रता द्वारा जीवन के उच्चतम् सोपानों को स्पर्श कर सकती है। नारी अस्मिता अपने स्थूल रूप में नारी की वैयक्तिकता, व्यक्ति या मनुष्य के रूप में उसकी गरिमा, प्रतिष्ठा तथा पहचान ही है जिसमें अपने जीवन पर खुद उसकी सत्ता होती है। 20वीं सदी में भूमण्डलीकरण, विज्ञापनवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के कारण भारतीय समाज में नारी अस्मिता के लिए बल मिला।***

----------X----------

## परिचय

भार्गव आदर्श हिन्दी शब्द कोश के अनुसार अस्मिता के अर्थ- ''आत्मश्लाघा' अर्थात अपने मुँह अपने गुणों का वर्णन करना, दूसरा अर्थ 'अहंकार' अर्थात् खुद पर घमंड करना और तीसरा अर्थ 'मोह' है। इतिहास,परंपरा सामाजिक एवं सांस्कृतिक समझ के तहत अपने को पहचान लेता है, हर किसी संदर्भ का मूल्यांकन करता है। वह सोचने लगता है-मैं कौन हूँ? इस समाज में मेरी हैसियत, मेरी इयत्ता, मेरी विशिष्ट पहचान क्या है ? विद्वानों ने अस्मिता को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-डा0 सुरेन्द्रनाथ सिंह के अनुसार-''अस्मिता का अर्थ है अंहता, विद्यमानता, अथवा होने का भाव अर्थात् वस्तु के स्वरूप का सम्यक् संबोध कराने वाली तत्वमयता उसकी अस्मिता है।

20वीं सदी में भूमण्डलीकरण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के कारण भारतीय समाज में नारी अस्मिता की अवधारण को बल मिला। आरम्भिक दौर में समाज-सुधार आन्दोलनों, राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और शिक्षा के विकास की मांग के कारण नारी की जड-प्रायः स्थितियों ने करवट बदलनी शुरू की। बीसबीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एक ऐसे दौर का संक्रमण काल बन गया जो उत्तरोत्तर पुरानी मान्यताओं, स्थापनाओं और परंपराओं को परे धकेल कर एक पूरी शक्ति के जागने, समझने का समय है। प्रचार-प्रसार माध्यमों ने एवं पत्रकारिता के व्यापक प्रसार ने भी नारी-मुक्ति संगठनों और आन्दोलनों को हवा दी। स्वयं स्त्रियों ने भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अपनी पहचान का आकंलन किया है, परिणामतः विषम चुनौतियों का सामना कर जीवन के हर क्षेत्र में उन्होंने उदाहरण भी प्रस्तुत किए है।

नारी अस्मिता की परिभाषा किसी निश्चित वैचारिक फ्रेमवर्क के अन्तर्गत नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों की खोज के बावजूद समाज में नवीन विकास और परिवर्तन अनेक अन्तर्विरोधों से युक्त हैं। परंपरा की विरासत और आधुनिकता का स्वीकार जिस निर्णायक क्षितिज की अपेक्षा रखता है, वह बहुत ही धुंधला है।

नारी के सार्वभौमिक अस्तित्व की अनिवार्यता के सम्बंध में इंदिरा गांधी ने कहा है कि -''नारी-स्वतंत्रता भारत के लिए विलासिता नहीं है, अपितु राष्ट्र की भौतिक, वैचारिक और आत्मिक संतुष्टि के लिए अनिवार्य बन गई है।'' डॉ. बी0आर0 अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में नारी मुक्ति के लिए अनुच्छेद 15(1) द्वारा लिंग के आधार पर किए जाने वाले भेद को समाप्त किया और अनुच्छेद 14 द्वारा नारी को पुरूष के समान बराबरी का दर्जा दिलाया एवं समान कार्य के लिए समान वेतन दिलाने की व्यवस्था की, किन्तु सीमोन द बाउवार का कहना है कि-''आज की स्त्री पारंपरिक नारी की भूमिका में स्वयं को पंगु नहीं बना देना चाहती, किंतु इससे बाहर आते ही उसे अपने नारीत्व का उल्लंघन करना पड़ता है, पुरूष यदि अपनी सेक्सुअलिटी के कारण संपूर्ण व्यक्ति बने,

www.ignited.in

तब स्त्री भी उसके बराबर अपनी पहचान नारीत्व को बनाए रखकर ही हासिल कर सकती है।''

सभ्यता और आर्थिक सामाजिक परिस्थितियों की विसंगतियों के साथ लिंग आधार पर किए गये सामाजिक वर्गीकरण में नारी अस्मिता के विषय में 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा लिखती हैं कि-''पुरूष के समान स्त्री भी कुटुम्ब, समाज, नगर तथा राज्य की विशिष्ट सदस्य है तथा उसकी प्रत्येक क्रिया का प्रतिफल सबके विकास में बाधा भी डाल सकता है और उसके मार्ग को प्रशान्त भी कर सकता है। प्रायः पुरूष का जीवन अधिक स्वच्छेद वातावरण में विशिष्ट व्यक्तियों के संसर्ग द्वारा बनता है और स्त्री का संकीर्ण सीमा में परंपरागत रूढ़ियों से जिससे न उसे अपने कुटुम्ब से बाहर किसी वस्तु का अनुभव हो और न अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान''।

## प्राचीन काल में नारी अस्मिता

आर्यों के आगमन से वैदिक धर्म (2000 से 800 ई0पू0) की स्थापना हुई। स्त्री अस्मिता का सर्वाधिक सशक्त रूप हमें वैदिक युग में ही देखने को मिलता है। उसके बाद तो दिनों-दिन स्त्रियों की स्थिति नीचे ही गिरती चली गई। यह युग मातृसत्ता प्रधान युग था। स्त्रियाँ न केवल पठन-पाठन के लिए स्वतंत्र थी वरन वेद ऋचाओं की रचना भी करतीं थीं। लोपामुद्रा, विश्वाश्वा, मैत्रेयी, धोषा, गार्गी तथ आत्रेयी आदि विश्वविख्यात विदुषियाँ है। उस समय विवाह के लिए स्वयंवर की प्रथा थीं और स्त्री गृहस्थ धर्म में उचित गरिमा की पात्रा थी।

वैदिक युग में स्त्री यज्ञ कार्य में भी भाग लेती थी। पुत्र न होने पर पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी पुत्री को ही माना जाता था। पति द्वारा पत्नी को 'भेंट' दिए जाने के उल्लेख भी 'निरूक्त' में मिलते हैं। अर्थात् इस युग में स्त्री सहज मानवी के रूप में स्त्रीत्व गुणों सहित समादृत थी। वैदिक युग के पश्चात का काल (ईसा से 800 वर्ष पूर्व से लेकर ई. सन् 200तक) स्त्रियों की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का काल रहा है। इस युग में मनुसंहिता के साथ-साथ धर्मसूत्र, कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अनेक महाकाव्यों की रचाएं हुई। स्त्रियों और शुद्रों की मुक्ति का एक मात्र मार्ग भक्ति ही है ऐसे संकेत परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप में इन ग्रंथों में देखने को मिलने लगे और इससे स्त्री की गरिमा को भारी ठेस पहुँची। मनुस्मृति ने तो और आगे बढ़कर स्त्री जाति पर इतने अंकुश लगा दिए कि वह एक जीवित प्राणी के बदले पराधीन भोग या वस्तु बन कर रह गई।

स्त्री पराधीनता के लिए मनुस्मृति को सीधा उत्तरदायी ठहराते हुए राजकिशोर लिखते है-''जहां मनुस्मृति के श्लोकों की प्रतिध्वनि नहीं पहुंची थी वे क्षेत्र स्त्री और पुरूष दोनों के लिए न्यूनतम वर्जनाग्रस्त रहे हैं। '' इस कथ्य की सच्चाई हम अत्यंत निचले वर्गों के स्त्री-पुरूष संबंधों में अभी भी देख सकते हैं। अपसंस्कृति की इस छाया की अपेक्षा यह वर्ग प्रकृति के अधिक निकट रहा। अतः यह वर्ग निर्विकार भी रह सका।

## मध्यकाल में नारी अस्मिता

आठवीं शताब्दी में मुस्लिम शासकों ने भारत की धरती पर कदम रखा और अंग्रेजी शासन की स्थापना से पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी तक भारत पर राज्य करते रहे। इस कालावधि में भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति में अनेक उतार चढ़ाव आये। उसे बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, बेमेल-विवाह, कन्या-शिशुओं की हत्या तथा सती-प्रथा जैसी अमानुषिक यातनाओं को सहना पड़ा।

मध्यकाल में नारी के प्रति विद्वेषकी भावना भारत में ही नहीं विदेश में भी थी। सीमोन द बाउवार फ्राँस की मध्युगीन स्त्रियों के बारे में बताती हैं- ''मध्ययुगीन पुरूष के मन में स्त्री के लिये नकारात्मक भाव अधिक होता था। दरबारी कवि प्रेम की महानता का वर्णन करते नहीं अघाते थे, लेकिन ठीक इसके विपरीत बुजुर्वा लेखन में हम औरत के प्रति विद्वेष अधिक पाते है।''

## आधुनिक काल में नारी अस्मिता

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा अत्यंत शोचनीय हो चुकी थी। तद्युगीन समाज में नारी की स्थिति प्राचीन रीतियों, रूढ़ियो, परंपराओं, छुआछूत के भेद के कारण एक गुलाम से अधिक कुछ भी न थी। उसका जीवन अनेक समस्याओं से घिरा हुआ था। स्त्रियों को जागरूक करना उन्हें सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में भाग लेने के लिए प्रेरित करना उस समय की अनिवार्य आवश्यकता थी। भारत में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के फलस्वरुप सामाजिक सुधार आंदोलन अस्तित्व में आये। इस विषय में राधा कुमार का यह कथन उल्लेखनीय है-''उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था ने अपने विस्तृत प्रशासनिक ढाँचे के अन्तर्गत कृषि एवं उद्योग से संबधित नई नीतियों के अनुपालन के लिये उस समय के प्रभावशाली समुहों (कुलीन, व्यापारियों, लेखकों, पटवारियों और अमीनों इत्यादि) को मिलाकर एक बुर्जुआ समाज तैयार हो गया तो इस वर्ग को अपने सुधार की जरूरत महसूस हुई। जात-पाँत, बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, ढोंग,पर्दा, बाल-विवाह, सती और अन्य कुरीतियों को आदिम और निष्कृष्ट मानते हुये उनके विरुद्ध अभियान शुरू किये गये।''

समाज सुधारकों ने पहली बार भारतीय समाज में नारियों की असमान स्थिति के विरोध में अपनी आवाज उठाई। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द विद्यासागर, एम.जी. रानाडे, महर्षि कर्वे, ज्योतिबा फुले, दयानन्द सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द आदि समाज सुधारकों ने नारी की समाज में दयनीय स्थिति पर अत्यधिक चिन्ता व्यक्त की । इन्होंने नारी की स्थिति में सुधार के प्रयासों की गम्भीर आवश्यकता समझी और स्त्रियों की जागरूकता के लिए नारी शिक्षा पर विशेष रुप से बल दिया। इस दिशा में पहला कदम राजा राममोहन राय ने रखा। उन्होंने सन् 1828 ई0 में 'ब्रहम समाज' की स्थापना करके सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों पर प्रहार किया। सती-प्रथा के विरोध में उनका प्रयास सर्वदा स्मरणीय रहेगा। उन्होंने विधवा-विवाह तथा स्त्री-पुरूष के समानाधिकार का समर्थन किया और इस सन्दर्भ-विशेष में पाश्चात्य संस्कृति को मूल्यवान समझा।

आधुनिक भारत में नारी की शोचनीय स्थिति में परिवर्तन लाने वाले प्रभाव उन्नीसवीं सदी से ही सक्रिय थे, किन्तु बीसवीं शताब्दी भारतीय नारी के लिए नव जागरण का संदेश लेकर आयी । अब नारी धर्म की रूढ़ियों को ठुकराकर पुरूष की बलात् दासता को अस्वीकार कर अपनी स्थिति को पहचान गयीं और अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गई। भारतीय विधान में भी नारियों का स्थान महत्वपूर्ण रखा गया। विवाह संबध-विच्छेद, सम्पत्ति अधिकार, दत्तक सम्बन्धी कानून बनाये गये। इस युग में नारी-शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा आदि को लेकर साहित्यकारों ने उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए अनेक रचनाएँ भी लिखीं। विभिन्न सामाजिक सुधार संस्थाओं के सामूहिक प्रयत्न से ही वैदिक काल के पश्चात् पहली बार नारी को सम्मानपूर्ण अवसर प्रदान किया गया। परिणामस्वरूप नारी को समान भावभूमि पर अपने व्यक्तित्व का विकास करने का मौका मिला।

## समसामयिक परिस्थितियाँ

हर युग की परिस्थितियों का तत्कालीन साहित्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। साहित्यकार की अभिव्यक्ति एवं कल्पना समाज की देन है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जिस तरह की परिस्थिति होगी, जिस तरह का वातावरण एवं परिवेश होगा, साहित्य में उसी प्रकार की अभिव्यक्ति होगी। मनुष्य की चेतना, सामाजिक वातावरण के अनुरूप होती है।

परिस्थिति में परिवर्तन के कारण हर काल में नारी अस्मिता में परिवर्तन आया है। यही परिवर्तन हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में व्यक्त हुआ है। अभी तक का इतिहास बताता है कि स्त्री अस्मिता के तेज से शब्द साहित्य जरूर प्रभाणित हुआ है। उसके विकास के साथ शब्द का रूप बदला है परिवेश बदला है और स्त्री-दृष्टि का साहित्य रचा गया है।

## सामाजिक परिस्थितियाँ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना उसका अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। समाज में रहकर ही मनुष्य का सर्वागीण विकास होता है। समाज सह-अस्तित्व की विकाससमान प्रकिया है जिसमें मनुष्य आपसी संबंधों के कारण अपने आत्मविस्तार,, सुरक्षा एवं सरंक्षण के लिए आपस में बंधे रहते हैं।

समाज में जो नारियाँ सदियों से शोषित, कुण्ठित एवं चारदीवारी के अन्दर कैद थी उन्हें स्वतंत्रता मिली तथा वे शोषण के प्रति विद्रोह, अपनी स्वतंत्रता एवं समानता के लिए संघर्ष करने लगीं। वे शिक्षा, नियम-कानून एवं हक के प्रति सजग होने लगीं। उनमें नवीन चेतना, नवीन भावना का संचार हुआ। आज वे परंपरागत रूढ़ियांे से मुक्त होकर स्वाभिमान से पुरूष के साथ हर कदम पर साथ चलने का प्रयास कर रही है। नारी विद्रोह से पुरूष के अहं को ठेस पहुँची, परिणमतः दामपत्य जीवन बिखरता गया और मानव मूल्य टूटने लगे, परिवार विधाटित होने लगा।

समाज में किसी भी वर्ग में महत्वपूर्ण स्थान एक नारी ही निभा सकती है। नारी अपनी अस्मिता को बचाने के लिए हर कदम पर एक नया एहसास प्राप्त करती है। नारी को समाज में सम्मान उस सीमा तक मिलता है, जिस सीमा तक समाज की उत्पादन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सहायता करने में मिलता है, मानव इतिहास इस बात का साक्षी है, जिन क्षेत्रों और युगों में विशेष रूप से आदि कृषि के युग में उत्पादन के मुख्य साधन में उन्नति करके नारी ने समाज के उत्पादन को एक नई मंजिल पर पहुँचाया तो बड़े पैमाने में मातृसत्तात्मक व्यवस्था अपने संपूर्ण धार्मिक, सांस्कृतिक, क्रियाकलापों दर्शन आदि के साथ नारी की महत्ता का गुणगान गाने लगी।

यदि हम महिलाओं को समाज में सम्मानित एवं सम्मान स्थान दिलाना चाहते हैं, तो उन्हें अपनी अस्मिता का हक उसे दे ताकि वे पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर एवं आत्मविश्वास के साथ इच्छित दिशा की ओर कदम उठाकर देश के हित में अपना यथाशक्ति योगदान दे सकें क्योंकि आत्मनिर्भरता के अभाव में अनेकों योग्य कुशल एवं महत्वाकांक्षी महिलाएँ परावलम्बी हो, कोई अन्य विकल्प न पा सकने के कारण घर की चारदीवारी के अंदर ही कसमसाती रहती है। वास्तव में आर्थिक आत्मनिर्भरता किसी भी देश के विकास की अवस्था

के सूचक के रूप में मानी जाती है, ठीक इसी प्रकार से नारी का सर्वांगीण विकास भी तभी संभव है जब वे धनोपार्जन के कार्यों में समान रूप से भाग लें।

## उपसंहार

नारी अस्मिता की परिभाषा किसी निश्चित वैचारिक फ्रेमवर्क के अन्तर्गत नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों की खोज के बावजूद समाज में नवीन विकास और परिवर्तन अनेक अन्तर्विरोधों से युक्त हैं। परंपरा की विरासत और आधुनिकता का स्वीकार जिस निर्णायक क्षितिज की अपेक्षा रखता है, वह बहुत ही धुधला है। नारी अस्मिता अपने स्थूल रुप में नारी की वैयक्तिकता, व्यक्ति या मनुष्य के रुप में उसकी गरिमा, प्रतिष्ठा तथा पहचान है, जिसमें अपने जीवन पर खुद उसकी सत्ता होती है। नारी अस्मिता नारी के व्यक्तित्व की विशिष्ट एवं विलक्षण पहचान है जो उसके समाज की विलक्षण ऐतिहासिकता एवं वास्तविक अथवा मिथकीय अतीत से जोडती है। यह निजत्व का भाव है जिसमें नारी की इच्छा-अनिच्छा महत्वपूर्ण होती है। यह नारी में अहंभाव उत्पन्न करते हुए स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की ख्वाहिश भी व्यक्त करती है। नारी अस्मिता आधुनिक युग का महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय प्रश्न है।

## संदर्भ ग्रंथ-सूची


1. राधाकृष्णन, डॉ. एस.: भारतीय संस्कृति कुछ विचार, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 110006, संस्करण-2014
2. पाण्डेय, मृणाल: परिधि पर स्त्री, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड,नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण 1996, तीसरा आवृति, 2013
3. दनकर, रामधारी सिंह: संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण (पेपर बैक्स) : 2010, पुनरावृत्ति, 2015
4. गुप्ता रमणिका: स्त्री-विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली-110032, सं0 2010
5. कस्तवार, रेखा: स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन प्रा0 नई दिल्ली-110002, पहला संस्करणः 2006, दूसरी आवृतिः 2013
6. प्रसाद, बदरी, प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास, ओम प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2007
7. यादव, उषा, हिन्दी की महिला उपन्यासों की मानवीय संवेदना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994
8. रस्तोगी, शैल, हिन्दी उपन्यासों में नारी, वि.भू. प्रकाशन, साहिबाबाद, प्रथम संस्करण, 1977
9. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण, 14वां संवत्, 2029
10. वर्मा, सुशील, आधुनिक समाज की नारी चेतना, आभा प्रकाशन, आगरा, संस्करण, 1998



**Corresponding Author**

**Savita***

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

savita21blb@gmail.com